|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 2-24), रविवार, 17 सितंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/uK24vy1MGvA

काम, क्रोध और लोभ तजो, नारायण का नाम जपो

नाम संकीर्तन, भजन, हनुमान चालीसा, प्रारम्भिक प्रार्थना और दीप प्रज्वलन के पश्चात विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ।

भगवान की अत्यन्त मङ्गलमयी कृपा से हमारा ऐसा सौभाग्य जागृत हुआ है कि हम लोग भगवद्गीता के चिन्तन और अभ्यास में तथा उसको अपने जीवन में लाने, उसकी दृष्टि को प्राप्त करके अपने जीवन को सफल बनाने, उसके सिद्धान्तों पर चलकर अपने जीवन को विजयी बनाने और प्रभु के चरणों की प्रीति प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। गीता का चिन्तन साधारण बात नहीं है। यह इस जन्म के और आगे आने वाले सभी जन्मों के लिए हमारा उद्धार कर देने वाला ग्रन्थ है। गीता का जितना-जितना चिन्तन करते जाएंगे, जीवन में आने वाले सभी संघर्षों में अपनी दृष्टि को हम उतना ही स्वच्छ पाते जाएँगे। जितनी शंकाएँ और अस्पष्टताएँ हैं, भगवद्गीता से उनके समाधान ऐसे मिल जाते हैं, जैसे टॉर्च के स्थान पर फ्लैशलाइट मिल गई हो।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि भगवान दैवीय गुणों और आसुरी गुणों की बात कर रहे हैं, दैवीय मनुष्यों और आसुरी मनुष्यों की नहीं। हम सभी मनुष्यों में दैवीय और आसुरी गुण कुछ न कुछ मात्रा में होते ही हैं। जिसमें जैसे गुणों की प्रधानता होती है, वह वैसा ही कहलाने लगता है। अतः इन सभी गुणों का चिन्तन दूसरों के लिए नहीं वरन् स्वयं के आकलन के लिए है।

16.2

अहिंसा सत्यमक्रोधः(स्), त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) ह्रीरचापलम्।।16.2।।

अहिंसा, सत्य भाषण, क्रोध न करना, संसार की कामना का त्याग, अन्तःकरण में राग-द्वेष जनित हलचल का न होना, चुगली न करना, प्राणियों पर दया करना, सांसारिक विषयों में न ललचाना, अन्तःकरण की कोमलता, अकर्तव्य करने में लज्जा, चपलता का अभाव।

विवेचन: श्रीभगवान ने छब्बीस दैवीय गुण बताएं हैं।

अहिंसा: पहले श्लोक में आठ दैवीय गुण बताने के पश्चात्, यहाँ भगवान ने नवाँ गुण बताया अहिंसा। अहिंसा एक व्यापक शब्द है। हम लोग झगड़ा करने, मारपीट करने, हत्या करने को ही हिंसा मानते हैं परन्तु मन, वाणी और कर्म, तीनों से हिंसारहित हो

जाना ही अहिंसा है। अपना विचार होना चाहिए कि मेरी पूरे दिन की गतिविधियों में मेरी ओर से किसी को मेरे विचार से, मेरे शब्दों से अथवा मेरे कर्मों से कष्ट तो नहीं पहुँच रहा? किसी के प्रति द्वेषपूर्वक विचार करना मानसिक हिंसा है परन्तु स्वयं के लिए नकारात्मक विचार करना भी मानसिक हिंसा का ही रूप है। हम अपने मन से जो विचार करते रहते हैं, वह कभी न कभी हमारी वाणी द्वारा प्रस्फुटित हो जाता है और वही कभी-न-कभी हमारे द्वारा कर्म के रूप में भी घटित हो जाता है। यह इसका क्रम है। अतः इसकी सम्भावना अधिक है कि हिंसा को मन के स्तर पर नियन्त्रित कर लेने पर वह कर्म के रूप में परिणत न हो। कुछ लोग घर में पनपने वाले क्षुद्र जीवों की हिंसा करते हैं, वे मच्छर, चूहों आदि को मारने के लिए विभिन्न प्रयोग करते हैं परन्तु इससे उत्तम है कि अपने घर को स्वच्छ रखें ताकि ऐसे जीव घर में उत्पन्न ही न हों। हमारे किसी भी ग्रन्थ में हिंसा का अनुमोदन नहीं किया गया है। महाभारत में तो युद्ध से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण शान्ति की स्थापना के लिए स्वयं को शान्ति-दूत के रूप में नियुक्त करते हैं। श्रीभगवान ने हिंसा को टालने का अन्तिम प्रयास भी नहीं छोड़ा।

सत्य: सत्य सभी छब्बीस दैवीय गुणों की रीढ़ की हड्डी है। पूरा शरीर ठीक हो परन्तु रीढ़ की हड्डी के किसी एक मनके पर भी चोट लग जाए तो व्यक्ति के पुनः सीधा खड़ा हो पाने पर भी आशँका उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार जिसका सत्य कमजोर है, उसका कोई भी अन्य दैवीय गुण टिक पाना कठिन है। असत्य के लिए बहुत दिमाग चलाना पड़ता है परन्तु सत्य हमारा स्वभाव है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

सत्य तो बोलें परन्तु प्रिय बोलें, किसी को बुरा लगने वाला सत्य न बोलें। "मैं तो सच बोलता हूँ, जिसको बुरा लगे तो लगे"- ऐसा विचार अनुचित है।

अक्रोध: क्रोध और अहङ्कार को इनके उदयकाल में ही दबा दिया जाए तो ये दब जाते हैं। जिस प्रकार एक छोटी सी चिंगारी हवा मिलने पर पूरे घर और गाँव को जला देती है, उसी प्रकार अग्नि रूपी क्रोध को हवा दे दी जाए तो वह भी सर्वनाश कर डालता है। क्रोध को पी जाइए। क्रोध एक आश्रित और परजीवी विकार है, यह कभी अकेले नहीं आता। कामना में विघ्न पड़ता है तो क्रोध आता है, काम में विघ्न पड़ता है तो क्रोध आता है, लोभ में विघ्न पड़ता है तो क्रोध आता है तथा मोह में विघ्न पड़ता है तो भी क्रोध आता है। हमें सामने वाले के कृत्य से क्रोध नहीं आता परन्तु जब वह व्यक्ति हमारी अपेक्षा के अनुरूप व्यवहार नहीं करता तब हमें क्रोध आता है। अगर अपनी अपेक्षा न हो तो सामने वाले का व्यवहार जैसा भी हो हमें क्रोध नहीं आएगा। अतः हमें यह देखना चाहिए कि मेरा क्रोध कैसे उत्पन्न हो रहा है? मेरी कामना पर विघ्न पड़ने से, मेरे अहङ्कार पर विघ्न पड़ने से, मेरे लोभ पर विघ्न पड़ने से, अथवा मेरे मोह पर विघ्न पड़ने से? इस प्रकार क्रोध को आरम्भ नहीं होने देना और यदि आरम्भ हो जाए तो उसे उसी क्षण पी जाना। उसके लिए भी विभिन्न उपाय बताए जाते हैं, जिनके माध्यम से यदि अपने क्रोध को कुछ क्षण भी रोक लिया जाए तो वह बढ़ने नहीं पाएगा।

त्याग: त्याग दैवीय गुणों का राजा है। हम सब ही नहीं बड़े-बड़े राजा-महाराजा और उद्योगपति भी ऋषि-मुनियों-सन्तों के चरणों में जाकर प्रणाम करते हैं। इसका कारण उनका शास्त्र-ज्ञान नहीं है वरन् उनका त्याग ही है। संसार त्याग की पूजा करता है। यह त्याग दिखावे का न हो, अपनी पूजा करवाने के लिए किया गया न हो, बल्कि जब त्याग की सहज स्वाभाविक अवस्था आ जाए, तब वह दैवीय गुण बन जाता है। अपने त्याग की घोषणा करके उसका रस न लिया जाए। जीवन जितना त्यागी होता जाता है, उतना ही अधिक चमकदार होता जाता है। दिखावे के त्याग से वह चमक नहीं आती अपितु और खिन्नता आती है कि मेरे त्याग करने के बाद भी कोई मुझमें महानता नहीं देखता। त्याग इतना सहज हो कि वह दूसरों के अनुभव में तो आए परन्तु स्वयं को पता भी न लगे।

शान्ति: हम लोग सुखों में शान्ति ढूँढते हैं। मैं घर पर पैसा लगाऊँगा तो मुझे शान्ति मिलेगी, मैं तीर्थयात्रा पर चला जाऊँगा तो मुझे शान्ति मिलेगी, मैं तप करूँगा तो मुझे शान्ति मिलेगी- ऐसा हमारा विचार रहता है परन्तु सुखों में शान्ति नहीं है, शान्ति में सुख है। जब आप शान्त होते हैं, तब आप सुखी होते हैं। जब आप सुखी होते हैं, तब आप शान्त नहीं होते। सुख में तो मन और अधिक उच्छृंखल हो जाता है। अपने अनुकूल घटना घटने पर मन अधिक उल्लसित हो जाता है। शान्ति में परम सुख है। अतः जीवन में शान्ति लाना आवश्यक है। अशान्त को सुख कैसे हो सकता है?

"अशांतस्य कुत: सुखम्"

कभी बिजली चली जाए और इंटरनेट, टीवी आदि बन्द हो जाएँ तो हमें शान्त हो कर स्वयं के साथ समय बिताने का अवसर मिलता है परन्तु हम शान्त होने की बजाय बोर होने लगते हैं। पूरे दिन में थोड़ा समय ऐसा अवश्य निकालना चाहिए जो हम स्वयं के साथ बिताएँ।

अपैशुन: निन्दा, चुगली, दूसरों की बुराई न करना अपैशुन कहलाता है। निन्दा और खुजली रसयुक्त दोष हैं। इनका परिणाम भयंकर होते हुए भी इनको करते समय आनन्द आता है। भगवान इसे आसुरी गुण बतलाते हैं। गन्दगी उछालने से अपने स्वयं के हाथ गन्दे होते हैं। दूसरे के दोष पता लगें तो उन्हें ढक दें। यही अपैशुनता है जो कि दैवीय गुण है।

दया: दया का ढोंग न करें, दया स्वभाव में होनी चाहिए। दया होने पर अपने मन में यह भाव आता है कि इस वस्तु की मुझे आवश्यकता ही नहीं है तो जिसे इसकी मुझसे अधिक आवश्यकता है मैं उसे दे दूँ। शायद भगवान ने इसीलिए मुझे इसके पास भेजा था। मुझे अपने समक्ष कोई कष्ट में दिखाई दे तो सहज ही उसकी सहायता करने का स्वभाव होना चाहिए। दया करने के लिए पात्रता का विचार भी आवश्यक नहीं है। अन्नदान और औषधि-दान के लिए संसार के निकृष्टतम व्यक्ति को भी कुपात्र नहीं माना गया है। कितना भी भयङ्करआतंकवादी हो, उसे मृत्युदण्ड ही क्यों न मिला हो, जब उसे जेल में डालते हैं तो उसको भोजन भी देते हैं और बीमार पड़ने पर चिकित्सा भी उपलब्ध कराते हैं। दया करते समय उपदेश देना घाव पर नमक छिड़कने के समान है। दुखी व्यक्ति को उपदेश छुरी की धार की तरह चुभता है।

अलोलुपता (लालच का अभाव): दूसरे में कोई श्रेष्ठता देखकर स्वयं उसके लिए ललचा जाना लोलुपता है। लोलुपता का आँखों से पता लग जाता है। सामने वाला हमारी आँखों में लालच को पढ़ लेता है।

मार्दव (कोमलता): अपनी वाणी में, अपने व्यवहार में, अपनी गति में कोमलता हो। अपने सब प्रकार के व्यवहार में जितनी कोमलता आती जाएगी, उतनी ही अपनी दैवीयता बढ़ती जाएगी।

ह्रीर (लज्जा): विचार करें कि मुझसे कोई गलत कार्य हो जाए तो मैं तर्क-वितर्क द्वारा उसको ढाँपने का प्रयास करता हूँ अथवा मुझे अपने कृत्य पर शर्म आती है? अपनी गलती को स्वीकार करना और उस पर लज्जित होना दैवीयता है।

अचापलम् (चञ्चलता का अभाव): आँखें सर्वाधिक चञ्चल होती हैं। किसी की आँखों को देखकर पता लग जाता है कि उसका स्वभाव चञ्चल है अथवा शान्त। जिसकी आँखें झुकी रहती हैं और जो अनावश्यक रूप से आँखों की हलचल नहीं करता, वह शान्त होता है। चपलता की जितनी कमी होती जाएगी, उतना ही जीवन दैवीय होता जाएगा।

16.3

तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत।।16.3।।

तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, वैर भाव का न होना (और) मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन ! (ये सभी) दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन:
तेज: जीवन में तेजस्विता होनी चाहिए। शास्त्रकारों ने सप्त धातुओं का वर्णन किया है। हम जो भोजन करते हैं उससे रस बनता है, रस से रक्त बनता है, रक्त से माँस बनता है, माँस से मज्जा बनती है, मज्जा से अस्थि बनती है, अस्थि से वीर्य बनता है, वीर्य से ओज बनता है और ओज से तेज बनता है। यह इसकी प्रक्रिया है। अतः जिसका जिस प्रकार का आहार-विहार होगा, वैसी ही उसके जीवन में तेजस्विता होगी। कुछ लोगों की वाणी इतनी तेजस्वी होती है कि वे जहाँ खड़े होकर बोलने लगते हैं, लोग उन्हें सुनते हैं। कुछ लोगों का व्यक्तित्व इतना तेजस्वी होता है कि वे जहाँ खड़े हो जाते हैं, वहाँ लोग उन्हें घेर लेते हैं। हमारी वाणी में,

हमारे चेहरे पर, हमारी बोल-चाल में, हमारी चाल-ढाल में जितना तेज होता है, उतना ही अधिक दूसरों पर उसका प्रभाव होता है और वे हमारा अनुसरण करने लगते हैं। अच्छे साधक के जीवन में तेजस्विता होनी चाहिए।

क्षमा: क्षमा सबको चाहिए होती है परन्तु करना कोई नहीं चाहता। स्वयं से गलती हो जाए तो दूसरों से क्षमा की अपेक्षा रहती है परन्तु दूसरों से गलती हो जाए तो उन्हें दण्ड अवश्य मिले, ऐसी अपेक्षा रहती है। दूसरों के लिए हम न्यायाधीश (जज) बनते हैं और अपने लिए वकील परन्तु हमें उल्टा करना होगा स्वयं के लिए जज और दूसरों के लिए वकील बनना होगा। अपने दोषों को बड़ा करके और दूसरों के दोषों को छोटा करके देखिए तो क्षमा का स्वभाव स्वत: विकसित होने लगेगा। क्षमा दूसरों के लिए नहीं परन्तु स्वयं के मन को शान्त रखने के लिए कीजिए। जिसे हम क्षमा कर देते हैं वह बात अपने मन से निकल जाती है परन्तु जिसे हम क्षमा नहीं करते वह हमारे मन में निरन्तर बनी रहती है। अपने मन के विचलन को मिटाने के लिए क्षमा कीजिए, सामने वाले पर उपकार करने के लिए नहीं, तब आप हर बार क्षमा कर पाएंगे। दूसरे के लिए करने से कभी-कभी ही क्षमा कर पाएंगे। विचार करें कि दूसरा गलती करता है तो मैं स्वयं को विचलित क्यों होने दूँ? दूसरों की गलती की सजा मैं स्वयं को क्यों दूँ?

धृति (धैर्य): जो जीवन में जितना शॉर्टकट (लघुत्तम मार्ग) ढूँढता है, वह उतना अशान्त रहता है। और जो जीवन में जितना सीधे रास्ते पर चलता है, वह उतना ही शान्त रहता है।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होए।।

बीज डालकर एक ही दिन में सौ घड़े पानी डाल देने से पेड़ नहीं निकल आता, वह अपने समय पर उगता है। बाल रोग चिकित्सकों के पास माताओं की भीड़ लगी रहती है कि मेरा बच्चा चलता नहीं, मेरा बच्चा बोलता नहीं, मेरा बच्चा खाता नहीं आदि। वे दूसरों के बच्चों से अपने बच्चे की तुलना करती हैं। हम मन्दिर जाते हैं तो वहाँ भी हमें शॉर्टकट से दर्शन चाहिए। हम कहीं भी पंक्ति में लगकर प्रतीक्षा नहीं करना चाहते।

धृति के दो अर्थ हैं- धैर्य और धारणा। कोई अच्छी बात समझ में आ गई और उसे पकड़ लिया तथा संकल्पबद्ध होकर उस पर आचरण आरम्भ कर दिया, तो यह भी धृति है। जीवन में धैर्य होना दैवीयता है।

शौच (शुद्धता): अपनी दसों इन्द्रियों और अन्तःकरण चतुष्ट्य को शुद्ध रखना तथा अपने को बाहर व भीतर से शुद्ध रखना शौच है। यह भी दैवीय गुण है।

अद्रोह: किसी ने मेरा बुरा किया हो तो भी मैं किसी को शत्रु नहीं मानता और मैं भगवान से भी उसका बुरा नहीं चाहता- यह अद्रोह है।

नातिमानिता: अपने में श्रेष्ठता का अभाव नातिमानिता है। हम छोटी-छोटी बातों पर स्वयं को बहुत बड़ा मानने लगते हैं। मैंने इतनी पढ़ाई की है, मैं कितना सुन्दर हूँ, मैं कितना धनवान हूँ, मेरे पास कितने उद्योग हैं, मैं उस संस्था का अध्यक्ष हूँ, मैं इतनी संस्थाओं से जुड़ा हुआ हूँ- ऐसी विभिन्न बातों के द्वारा हम स्वयं को दूसरों से बड़ा मानकर अहङ्कार करते रहते हैं। मान की चाहना न करें। स्वाभाविक रूप से मान मिले तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु उसके प्रति अपनी चाहत न हो। महँगी ब्रांडेड वस्तुएं खरीदना भी अतिमानिता है।

भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन, ये छब्बीस दैवीय गुण हैं। परन्तु ये सभी गुण किसी एक व्यक्ति में शत-प्रतिशत नहीं हो सकते। साधक को यह देखना चाहिए कि उसमें किन-किन गुणों में कितनी-कितनी कमी है। वह प्रयत्न करके अपनी कमियों को दूर करे, यह अपनी दैवीयता बढ़ाने और गीता को अपने जीवन में लाने का उपाय है।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।
अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।।16.4।।

हे पृथानन्दन ! दम्भ करना, घमण्ड करना और अभिमान करना, क्रोध करना तथा कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - (ये सभी) आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन: अब श्रीभगवान आसुरी गुणों के बारे में बताते हैं।

दम्भ, दर्प और अभिमान: दम्भ, दर्प और अभिमान एक जैसे शब्द प्रतीत होते हैं परन्तु इनमें सूक्ष्म अन्तर है। मैं ज्ञानी हूँ, मैं धनवान हूँ, मैं बलवान हूँ, मैं बुद्धिमान हूँ आदि जो अपने पर हम गर्व करते हैं, उसे अभिमान कहते हैं। मैं-मैं-मैं-मैं करना अभिमान है। जब मैं अपने से जुड़ी हुई बातों पर गर्व करता हूँ, जैसे मेरी फैक्ट्री, मेरा मोबाइल, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरी गाड़ी, मेरी कोठी आदि, तो वह दर्प है अर्थात अपने से जुड़ी हुई बातों पर घमण्ड करना। मेरे पास कोई गुण न हो परन्तु मैं उसका दिखावा करूँ- यह दम्भ है। किसी दूसरे की बड़ी गाड़ी के साथ सेल्फी लेना, मेहमान के आने पर उसे सुनाते हुए अधिक जोर से तथा अधिक देर तक पूजा पाठ करना आदि झूठा प्रदर्शन दम्भ है। मैं पर अभिमान, मेरे पर दर्प और मैं व मेरा दोनों न हों, केवल दिखावा हो तो दम्भ।

क्रोध: जो जितना क्रोधी है, वह उतना ही आसुरी है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के तीसरे अध्याय में कहा:

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहाद् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

क्रोध की भावना बढ़ते ही मनुष्य के मन में सम्मोह आ जाता है और उसकी बुद्धि भ्रमित होने लगती है। सम्मोह के आते ही उसकी स्मृति का लोप हो जाता है। वह यह भूल जाता है कि मैं किसके सामने खड़ा हूँ, किससे बात कर रहा हूँ और फिर बाद में वह पछताता है। स्मृति का नाश होने से उसकी बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होते ही मनुष्य का नाश हो जाता है। इसलिए क्रोध से सदा बचना चाहिए क्योंकि क्रोध स्वयं करने वाले का ही नाश कर देता है।

पारुष्य (कठोरता): यह मार्दव यानी कोमलता का विपरीत है। कुछ लोगों का दिल कभी पिघलता ही नहीं चाहे सामने कितनी ही बुरी घटना हो जाए। वे बीमार नौकर से भी काम लेते हैं। पशुओं के प्रति और अपने अधीनस्थों के प्रति भी उनमें कठोरता भरी रहती है।

अज्ञान: एक बड़े विद्वान ने कहा कि जितना मैं पढ़ता गया उतना ही अधिक मैं अपने अज्ञान को जानता गया। मुझे पता लगता गया कि मैं क्या-क्या नहीं जानता और भी अधिक पढ़ने पर पता लगा कि मैं तो कुछ जानता ही नहीं। गड़बड़ यह है कि जो कुछ भी नहीं पढ़ते, उन्हें अपनी अज्ञानता का भी ज्ञान नहीं होता। थोड़ी गीता पढ़ ली तो हमें लगता है कि हमें बहुत कुछ आ गया। जिसको अपनी अज्ञानता का भास नहीं है वह आसुरी है।

भगवान इन सब उपरोक्त गुणों को आसुरी लोगों के लक्षण बताते हैं।

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि दैवीय सम्पदा मुक्ति के लिए है और आसुरी सम्पदा बन्धन के लिए अर्थात संसार में बारम्बार

जन्म लेने के लिए है। वे अर्जुन को यह प्रमाणित करते हैं कि तुम दैवीय गुणों को लेकर ही उत्पन्न हुए हो, अतः तुम शोक न करो।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचन: भगवान ने समस्त प्राणियों की दो श्रेणियाँ कर दीं- दैवीय और आसुरी। दैवीय लोगों के विषय में पहले बताकर अब वे अर्जुन को आसुरी प्रकृति के लोगों के विषय में विस्तार से सुनने की आज्ञा देते हैं।

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! आसुरी प्रवृत्ति वाले लोग क्या करना और क्या नहीं करना, क्या खाना (पथ्य) और क्या नहीं खाना (अपथ्य), क्या बोलना और क्या नहीं बोलना, इन बातों को स्पष्टता से नहीं समझते। अतः उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि ही होती है, न ही उनका आचरण शुद्ध होता है और न ही वे सत्य का पालन करने वाले होते हैं।

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

विवेचन: सत्य में अप्रतिष्ठित ऐसे लोग यह मानते हैं की जगत की रचना किसी ने नहीं की, यह तो अपने आप ही बन गया। वे ईश्वर को नहीं मानते। वे कहते हैं कि यह आश्रय-रहित संसार केवल कामना के कारण स्त्री-पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न हुआ है, इसके सिवा इसका और कोई कारण नहीं है।

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन: जितने वामपन्थी और नक्सली होते हैं, वे गाँवों में जाकर आदिवासियों को उल्टी-पुल्टी बातें सिखाते हैं। उनकी

मूर्तिपूजा बन्द कराते हैं, ईश्वर के प्रति उनकी आस्था समाप्त कर देते हैं, सामाजिक प्रथाओं से भी उन्हें दूर कर देते हैं, यही वामपन्थ है। इस प्रकार मिथ्या ज्ञान का अवलम्बन करके जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है, ऐसे अल्पबुद्धि वाले, सबका अपकार करने वाले तथा उग्र कर्म करने वाले क्रूर मनुष्य केवल जगत के नाश के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन: ऐसे दम्भ, मान और मद में चूर रहने वाले मनुष्य किसी भी प्रकार से पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को धारण करके भ्रष्ट आचरण करते हैं। उन्हें सुख मिले इसके लिए वे चोरी करना, कर्ज लेना, दूसरों का अहित करना, दूसरों का हक मारना आदि सबके लिए तैयार रहते हैं।

16.11, 16.12

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।
आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।
(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन: वह कभी सुखी नहीं रह पाते और सदा चिताओं से ग्रस्त रहते हैं। उन्हें लगता है कि मैं यह करूँगा तो यह पा लूँगा, वह करूँगा तो वह पा लूँगा- इस प्रकार भोग पदार्थों के संग्रहऔर उनके भोग में ही लगे रहकर वे इसी को जीवन समझते हैं। आशा का जन्म कामना से होता है, कामना का जन्म वासना से होता है और वासना कभी पूरी नहीं होती। मनुष्य कामना पूरी करने के उपाय ढूँढता है। कामना पूरी न होने पर वह उसके विघ्नों को खोजता है। विघ्न आने पर उसे क्रोध आता है। फिर वह विघ्नों को शान्त करने का प्रयास करता है। वह धन और शक्ति का सञ्चय करने का प्रयास करता है, जिससे किसी भी प्रकार से उसकी कामनाएँ पूरी हो जाएँ। भविष्य में कामना पूरी होने की जो सम्भावना है, उसके चिन्तन का नाम आशा है। मैं यह करूँगा तो भविष्य में यह प्राप्त हो जाएगा, कभी तो मेरे दिन भी अच्छे आएँगे- यह आशा है।

आशा पूरी न होने पर निराशा होती है। आशा पूरी हो अथवा नहीं कुछ समय पश्चात् नयी आशा का जन्म हो ही जाता है। कामनाएँ पूरी होने पर मुझे कितना सुख-मान मिलेगा और दूसरे कितना जलेंगे, इसका चिन्तन बहुत सुखद लगता है। इस प्रकार मनुष्य आशाओं की सैकड़ों रस्सियों से बँधा हुआ है।
एक कविता के बोल हैं:

क्यों कल्पना खुशी की, खुशी से ज्यादा खुशी देती है?
क्यों सामने की खुशी मुट्ठी से, रेत की तरह फिसल जाती है?

चिन्तन का सुख आशा को नित्य नवीन ताजा रखता है। कोई आशा अकेली नहीं चलती, हमारे साथ बहुत सी आशाओं का

पैकेज (सँकुल) चलता है। जैसे अच्छा परिवार हो तो अच्छा घर हो, उसमें अच्छा गैरेज हो, उसमें अच्छी कार हो, वह मुझे खुद चलानी आती हो, पेट्रोल का दाम भी कम रहे, मेरे जैसी गाड़ी कोई और न ले ले, गाड़ी पर कोई निशान न लग जाए आदि अनन्त आशाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं। कुछ पूर्ण, कुछ अपूर्ण ऐसी विभिन्न आशाओं के चक्कर में अपने वर्तमान जीवन का सुख कब नष्ट हो गया, यह हमें पता भी नहीं लगता। आशा की दौड़ में हम जीवन भर केवल भागते रहे परन्तु जो हमारे पास था, उसे हम कब पीछे छोड़ आए, यह हमें पता ही नहीं लगा। मरते समय भी जो आशाएँ शेष रह जाती हैं, उनकी पूर्ति के लिए दूसरा जन्म लेना पड़ता है। धन की आशा रखकर मरने वाले को साँप का जन्म मिलता है; बच्चों की आशा रखकर मरने वाले को कूकर की योनि मिलती है; मकान की आशा रखकर मरने वाले को उसी मकान में छिपकली का जन्म मिलता है। इस प्रकार जितनी आशाएँ होती हैं, उतनी योनियों में जाना पड़ता है।

आसुरी स्वभाव वाला इन आशा-पाशों को बढाता है परन्तु दैवी स्वभाव वाला आशा-पाश को काट डालता है। दो ही तरीके हैं, या तो इन आशाओं को काट डालो या इन आशाओं को बढ़ाओ।

अपनी समस्त आशाओं को केवल एक राम जी की आशा में बाँध दें। सुन्दरकाण्ड के सैंतालीसवें श्लोक में कहा गया है:

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।

भगवान यहाँ कहते हैं कि दस बातों में मनुष्य की ममता होती है: पैदा करने वाली माता, पिता, मित्र, पुत्र, पत्नी, तन, धन, भवन,

सुहृद और परिवार। इन दस की आशाओं में मनुष्य फँसा रहता है। इन सब की रस्सियों को बँटकर एक डोरी बनाओ और मुझसे बाँध दो।

जिस तरह से राम जी रखें उस तरह से रहने से मनुष्य वर्तमान के सुख का आनन्द लेता है। जितना-जितना मनुष्य वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति की अनुकूलता प्रतिकूलता के आधार पर भविष्य के सुखों का विचार करता है, उतना-उतना ही उसका वर्तमान का सुख लुप्त होता जाता है।

16.13, 16.14, 16.15, 16.16

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।
असौ मया हतः(श्) शत्रुः(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।
वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।
हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।
(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन: मैंने आज यह प्राप्त कर लिया, मैं आगे यह और प्राप्त कर लूँगा; मेरे पास इतना धन है, इतना और हो जाएगा; वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया, उन शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा; मैं ही ईश्वर हूँ; मैं ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ; मैं सब सिद्धियों से युक्त हूँ, मैं बड़ा धनी हूँ, मैं बड़े कुटुम्ब वाला हूँ, मेरे समान दूसरा कोई नहीं है; मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, आमोद-प्रमोद करूँगा, इस प्रकार अज्ञान से मोहित होकर अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले भयंकर नरकों में गिरते हैं। जिस प्रकार हिरण्यकशिपु स्वयं को भगवान मानने लग गया था और यह कहता था कि जो भगवान विष्णु की पूजा करेगा उसे मैं मार डालूँगा, मेरा ही मन्दिर बनाओ, मेरी ही पूजा करो, उसी प्रकार उन आसुरी स्वभाव वालों की भी ऐसी ही वृत्ति हो जाती है।

16.17

आत्मसम्भावितः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन: वे अपने आप को श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त होकर केवल नाममात्र के लिए पाखण्ड से शास्त्रविधि से रहित यजन करते हैं। लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक जी ने गणपति पूजन की बहुत सुन्दर शास्त्रोक्त विधि समाज को दी लेकिन आज उसका विकृत रूप देखने में आता है, तो बड़ा कष्ट होता है। गणेश पूजन के नाम पर बड़े-बड़े

पण्डाल बनाए जाते हैं, उन पण्डालों में भद्दे-भद्दे फिल्मी गीत बजाए जाते हैं, उन पर कम कपड़ों में लड़कियाँ नाचती हैं, गणेश जी से भी बड़ी नेताओं की तस्वीर लगाई जाती हैं। पूजन के लिए कोई पण्डित जी भी नहीं होते। ऐसे ही नवरात्रों में शराब पीकर गायक रात-रात भर माता की भेंट गाते हैं, यह भक्ति का विकृत रूप है। हमें इस पर विचार करना चाहिए।

16.18, 16.19, 16.20

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।
तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।
आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।
उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।
हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि ऐसा जो अहङ्कारी मनुष्य दूसरों से द्वेष करता है, वह अपने हृदय में बैठे हुए सब के अन्तर्यामी रूप मुझ परमेश्वर से भी द्वेष करता है। ऐसे मनुष्य को मैं बारम्बार आसुरी योनियों में भेजता हूँ । वे मूढ़ मनुष्य मुझे तो कभी प्राप्त कर ही नहीं पाते परन्तु जन्म-जन्म में विभिन्न आसुरी योनियों को प्राप्त करते हैं और उनसे भी अति नीच गतियों को प्राप्त होते हैं। वे घोर नरकों में गिरते हैं और उसके पश्चात् भूत-प्रेत-पिशाच बनकर कष्ट भोगते हैं।

16.21, 16.22

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभः(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।
एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।
हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: भगवान कहते हैं काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के द्वार हैं। जो इन पर नियन्त्रण न करके इनको बढ़ाता जाएगा, वह अन्त में पापाचार करता हुआ आसुरी वृत्तियों में पड़कर आसुरी लोकों में जाएगा। नियन्त्रण न करने से काम, क्रोध और लोभ में से कोई एक भी बिगड़कर अन्त में मनुष्य को असुर बना देता है और फिर उसे महान नरकों में गिरना पड़ता है। उसकी अधोगति होती है। इसीलिए भगवान इन तीनों को नियन्त्रित करने के लिए कहते हैं। जो इन तीनों का त्याग करता है वही परमात्मा की प्राप्ति के योग्य बनता है।

16.23, 16.24

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।
तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।
अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि जो पुरुष शास्त्रविधि को त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न परम गति को प्राप्त होता है और न ही सुख को प्राप्त होता है इसलिए शास्त्र के वचनों को तथा आप्त वचनों को प्रमाण मानते हुए सब कर्त्तव्य कर्म करने चाहिए। आजकल ऐसे लोगों की भीड़ है जो कहते हैं कि श्राद्ध का भोजन किसको मिलेगा, यह किसने देखा है, मैं तो अनाथालय में जाकर बाँट दूँगा, क्या करना किसी मोटे ब्राह्मण को जिमा कर?

जो शास्त्रों का ज्ञान नहीं रखते, जिन्होंने शास्त्र नहीं पढ़े हैं, उनके लिए जो बातें परम्परा से चलती आ रही हैं, जो सन्त-महात्माओं के प्रवचनों से ज्ञात होती हैं , वे सभी शास्त्र के वचनों के अन्तर्गत आती हैं। हमारे कुलों की परम्पराएँ और आप्तवचन शास्त्र के ही प्रमाण हैं। इसलिए उनका पालन करने से शास्त्रविधि का दोष नहीं लगता। आचार्य परम्परा से नियुक्त किसी सतगुरु की ही बातों को प्रमाण मानना चाहिए। भगवान कहते हैं अर्जुन इसलिए तुम्हारे लिए कर्त्तव्य और कर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं। ऐसा जानकर तुम शास्त्रविधि से नियत किए हुए कर्मों को करने में संलग्न रहो।

इसके साथ ही यह ज्ञानमय अध्याय समाप्त हुआ। इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर हुए।

:: प्रश्नोत्तर::

प्रश्नकर्ता- श्री मृणमय सरकार भैया

प्रश्न - मन को स्थिर कैसे रखें?

उत्तर - मन चञ्चल है। स्थिर कैसे रखना है, यह बाद की बात है। पहले उसे कहाँ से हटाकर कहाँ लगाना है। यह करना है।

अर्जुन कहते हैं -
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।6.34।।

वायु के समान मन को रोक पाना बहुत मुश्किल है।
श्रीभगवान इसका उपाय बताते हैं -

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।6.35।।

मन को राजस और तामस वृत्तियों से हटाकर सात्त्विक वृत्ति में लगाना। पूरी दिनचर्या और कार्यकलाप का सात्विकता में बदलाव।

प्रश्नकर्ता - श्री शशि कुमार वैश्य भैया।

प्रश्न - हानि पहुँचाने वाले को दूर कैसे रखें?

उत्तर - अगर वे अपने परिवार के हों, तो दूर तो नहीं रहा जा सकता। उनके प्रति उदासीन हो सकते हैं। उनके प्रति द्वेष या अमङ्गल भाव नहीं होना चाहिए। सीमित बात करना, उपेक्षा करना। उसके किसी पूर्वजन्म कर्मों से उसमें यह दोष आ गया, उसके कल्याण हेतु हम प्रार्थना करें। दूसरे की कमियाँ अलग हैं, मेरी कमियाँ अलग हैं। ऐसा मान कर उपेक्षा करना।

प्रश्नकर्ता- ज्योत्स्ना माई नाइक दीदी

प्रश्न - पूजा ब्राह्मण से करवाएं या स्वयं करें?

उत्तर - सामान्य तथा दैनिक पूजा बिना ब्राह्मण के स्वयं ही कर सकते हैं। नवरात्रि की पूजा भी स्वयं कर सकते हैं। विशेष प्रकार की पूजा अर्चना, हवन ब्राह्मण से ही करवाना चाहिए। हमारे सनातन धर्म में जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, उसे गायत्री मन्त्र जाप नहीं करना चाहिए। हमारे शास्त्रों के अनुसार गायत्री मन्त्र का आवाज से उच्चारण करना निषेध है। बोलकर करना मना है।

प्रश्नकर्ता- डॉ महेन्द्र शर्मा भैया

प्रश्न - दैनिक पूजा में गीता के कौन से श्लोक पढ़ने चाहिएं?

उत्तर -

स्वामी जी ने बताया है, चौथे अध्याय के छः से दस तक पाँच श्लोक प्रतिदिन की पूजा में पाठ करने चाहिए।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।4.6।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥4.7॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥4.8॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।4.9।।
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।4.10।।

प्रश्नकर्ता - श्री सुनील सोनी भैया।

प्रश्न - ॐ का उच्चारण यज्ञोपवीत वाला ही कर सकता है?

उत्तर - ॐ नम: शिवाय: का जप आप करना चाहें तो कर सकते हैं। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। ॐ के साथ जो वेद मन्त्र शुरू होते हैं, उनका उच्चारण केवल यज्ञोपवीतधारी को ही करने चाहिए।
स्त्रियों को ॐ का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - पूनम रानी कश्यप दीदी

प्रश्न - आशा से कार्य करें, वैसा न हो, तो खिन्नता आ जाती है।

उत्तर - **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
किसी भी काम का परिणाम तय करना हमारे हाथ में नहीं है। किसी भी योजना में कोई न कोई त्रुटि रह जाती है।
आशा बढ़े नहीं और एक आशा पूरी हो गई तो दस आशाएं खड़ी नहीं कर लें। यह सावधानी रखनी चाहिए। कोई लक्ष्य निर्धारित करना, उसके लिए कार्य करना, यह कोई बुराई नहीं है। इस Learn Geeta को दो करोड़ जन तक पहुँचाने का लक्ष्य, अच्छी बात है। इसके लिए पागलपन करने लगना ठीक नहीं है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||